UNIVERSITY OF DELHI
निष्ठा धृति सत्यम्

DELHI UNIVERSITY
LIBRARY

DELHI UNIVERSITY LIBRARY

Cl. No. O152:1M86:26 H8

Ac. No 67881

Date of release for loan

This book should be returned on or before the date last stamped below. An overdue charge of one anna will be charged for each day the book is kept overtime.

श्रीहरिः

वन-वैभव

मैथिलीशरण गुप्त

साहित्य-सदन,
चिरगाँव (झाँसी)

२००५ वि०

मूल्य

श्रीरामकिशोर गुप्त द्वारा
साहित्य प्रेस, चिरगाँव (झाँसी) में मुद्रित ।

श्रीगणेशायनमः

वन-वैभव

पूर्वार्द्ध

अतुल वह अपना हेमागार,
जलाकर कर देने को छार,
जानकी रूपी आग अपार,
चुराने का करके कुविचार,
चला जो रावण निपट निषिद्ध,
मङ्गलाचरण करे वह सिद्ध ?

"तुम्हारे भाई बेचारे,
जुए में जो सब कुछ हारे,
विपिन में दीन भाव धारे,
भटकते है मारे मारे।
न जानें कैसे हैं वे लोग,
यहाँ हम करते हैं सुख-भोग !

खबर लें उनकी, चलो जरा,
कि वन में होगा हृदय हरा।
वहाँ है निर्मल नीर भरा,
और मृगया के योग्य धरा।"
शकुनि की सुन यों गूढ़ गिरा,
हँसा दुर्योधन हठी निरा।

"खबर को तुमने खूब कही,
उचित है मामा, हमें यही।
पिता की आज्ञा किन्तु रही,
वहाँ मृगया ही मुख्य सही।"
कर्ण ने कहा—"धन्य लक्षी,
एक ढेले में दो पक्षी!"

विकट यह तीन तिकट मिल के,
हँसा फिर खिल खिल कर खिल के,
हौसले ले ले कर दिल के,
ताड़ कर करके तिल तिल के,
सफल करने अभिलाष नया,
अन्ध नृप-निकट तुरन्त गया।

कहा दुर्योधन ने—"हे तात,
लगी है कुछ सिंहों की घात।
विपिन में है उनका उत्पात,
जहाँ है अपना पशु-संघात।
करेंगे हम मृगया वन में,
घोष यात्रा की है मन में।"

सुना भूपति ने "हूँ" करके,
"ठीक है" कहा आह भर के।
"हेतु हैं किन्तु वहाँ डर के,
विचारो तुम्हीं ध्यान धर के।
वहीं पाण्डव भी रहते हैं,
दुःख मन ही मन सहते हैं।

देख कर तुमको सम्मुख हाय!
क्रोध उनका न कहीं जग जाय।
रहेगा तो फिर कौन उपाय?
न समझो तुम उनको असहाय।
शक्ति उनकी है सबको ज्ञात,
सुरों में भी है यश विख्यात।"

शकुनि ने कहा—"व्यर्थ यह सोच ,
प्रबल हों वे या पूरे पोच ,
कहूँगा यह मैं निस्सङ्कोच ,
नहीं है उनके मन में मोच ।
न हो जब तक अज्ञात-निवास ,
करेंगे वे न विरोधाभास ।"

भूप को देकर यों सन्तोष ,
साथ लेकर बहु जन, धन-कोष ,
दैव का लिये अलक्षित रोष ,
घोष-यात्रा का करके घोष ,
जले पर नमक छिड़कने हाय !
चला वह कुरुकुल का समुदाय ।

धरा को धसका कर मातङ्ग
बढ़े दिखलाकर निज गति-रङ्ग ।
उड़ा कर उसकी धूल तुरङ्ग ,
चले ज्यों चपल अपाङ्ग सभङ्ग ।
भूमि पर सङ्कट-सा आया ,
उसे ऊँटों ने उकसाया ।

मुदित थे सब यात्री मन में ,
समाती स्फूर्ति न थी तन में ,
नया जीवन था जन जन में ,
कि होगा अब विहार वन में ।
  जहाँ जिस रात पड़ाव पड़ा
  हुआ कौतुक-सा वहाँ खड़ा ।

शान्त वन भी तब नगर बना ,
वहाँ जब शिविर समूह तना ।
उठा कोलाहल घोर घना ,
हुए सब खग-मृग भीत-मना ।
  जिधर पाण्डव थे, वे भागे ,—
  खबर-सी देने को आगे !

आज पाण्डव वन-वासी हैं ,
पास वे दास न दासी हैं ।
न भोगी हैं, न विलासी हैं ।
उदासी हैं, सन्यासी हैं ।
  कहाँ वे विभव विलीन हुए ?
  देशपति जो थे दीन हुए !

सती हँसती भी रोती है,
धैर्य्य धीरों के खोती है।
भींगती और भिगोती है,
बीज बदले के बोती है।
विषम वैरांकुर पतियों के;
न सींचें क्यों दृग सतियों के?

शत्रु-कृति पतियों से कहती,
द्रौपदी सब कुछ है सहती।
पाण्डु-कुल-वृक्षों में बहती,
पवन-सी अस्थिर है रहती।
पवन वह कि जो जिलाती है,
और झोंके भी लाती है।

वहाँ जो खग-मृग चरते हैं,
प्यार उस पर वे करते हैं।
किन्तु मन ही मन डरते हैं,
पगों में ही सिर धरते हैं।
प्यार के बदले में निर्दिष्ट;
दया ही है उन सबको इष्ट।

वीर पाण्डव भी भ्रान्त न थे ,
विपिन में बैठे श्रान्त न थे ।
किन्तु केवल विक्रान्त न थे ,
धीर भी थे कि अशान्त न थे ।
समय की उन्हें प्रतीक्षा थी ,
धर्म्म की जैसी दीक्षा थी ।

पार्थ ने तप कर मन-भाया ,
विजय-वर शङ्कर से पाया ।
शूर वह सुरपुर हो आया ,—
वहाँ से दिव्यायुध लाया ।
यत्न यों उनके जारी हैं ,
विरत कब वे व्रतधारी हैं ?

वहाँ बहु ऋषि-मुनि आते हैं ,
विविध व्याख्यान सुनाते हैं ।
शान्ति उनसे सब पाते हैं ,
कुदिन यों कटते जाते हैं ।
पुरोहित हैं उनके जो धौम्य ,
कराते हैं सुयज्ञ वे सौम्य ।

दिखाकर अपना वैभव-वेश ,
जलाने को उनका हृद्देश ,
सुयोधन ने तज लज्जा-लेश ,
किया वन में जिस समय प्रवेश ,
युधिष्ठिर शान्त, सुसंयत थे ,
रुचिर राजर्षि यज्ञ-रत थे ।

देख कर कौरव-दल, भयभीत
भगे जो मृग-विहङ्ग कलगीत ,
जान निज शरण उन्हें सुविनीत
हुए चिन्तित वे परम पुनीत ।
तभी आये कुछ वनचारी
उन्होंने कथा कही सारी ।

युधिष्ठिर ने ली लम्बी साँस ,
भीम के रोम हुए कुश-काँस ।
गड़ी अर्जुन को मानों गाँस ,
नकुल के नख में थी क्या फाँस ?
सन्न सहदेव हुए निरुपाय ,
हँसी या रोई कृष्णा हाय !

मौन था फिर भी सभी समाज ,
द्रौपदी बोली तब सव्याज—
"भाइयों की सुध लेने आज
पधारे हैं कौरव - कुल - राज !
मिलूँगी पर मैं कैसे, हाल ?—
खिंचा है चीर, खुले हैं बाल !

करें आतिथ्य आप सब लोग ,
रङ्क - राजों का हो संयोग ;
हाय रे ! भङ्ग-भाग्य के भोग ,
मरण ही है मेरा उद्योग !"
उमड़ आये फिर अश्रु असीम ;
गरज कर बोल उठे फिर भीम—

"उचित आतिथ्य करूँगा मैं ,
हीनता सभी हरूँगा मैं ।
काल से भी न डरूँगा मैं ,
कि मारूँगा कि मरूँगा मैं ।
गिरा कर सु-गुरु गदा की गाज ,
चुका लूँगा सब बदला आज ।

द्रौपदी, मत हो यों बेहाल ,
भीम जीवित है अरि-कुल-काल ।
स्वकर कर शत्रु-रुधिर से लाल
वही बाँधेगा तेरे बाल ।
स्वयं हरि ने होकर अनुकूल ,
दिया है तुझे अनन्त दुकूल ।

हमारा विभव हमीं क आज
दिखाने आया शत्रु-समाज !
नहीं आती नीचों को लाज ,
देख लूँगा मैं सारे साज ।
हँसें वे, मैं मुहँ तोड़ूँगा ,
न जीता उनको छोड़ूँगा ।”

भीम थे या था क्रोध कठोर ?
गिरा थी उनकी या घनघोर ?
पार्थ ने धर धन्वा की डोर ;
दृष्टि की धर्म्मराज की ओर ,
कि मिल जावे उनका आदेश ,
और मिट जावें मन के क्लेश ।

फेर कर तब धीरज के साथ
भाइयों की पीठों पर हाथ,
विश्व-विश्रुत गुण-गौरव-गाथ,
बोलने लगे पाण्डु-कुल-नाथ—
"शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त ;
न आतुर हो तुम यों एकान्त।

हुआ जो सारा विभव विनष्ट,
हुए जो हम सब राज्य-भ्रष्ट,
भोगने पड़े हमें जो कष्ट,
दोष यह है मेरा ही स्पष्ट।
किन्तु ज्यों तुमने इसे सहा,
सुनो त्यों मेरा आज कहा।

पिता के हम प्रिय छोटे थे,
मरे जब वे, हम छोटे थे।
रुदन कर भू पर लोटे थे,
हमारे दिन जो खोटे थे।
उठाया था हमको किसने ?
उसे हैं सौ प्रणाम जिसने।

वही पालक बालकपन के,
पिता हैं इस दुर्योधन के।
वही रक्षक हैं जीवन के,
बड़े चाचा पाँचों जन के।
पूर्ण करके त्रुटियाँ सारी,
बनी माद्री माँ गान्धारी!

उन्होंने हमें सँभाला था,
पिता-माता ज्यों पाला था।
प्यार सौ पुत्रों वाला था,
तदपि हमको दे डाला था!
उन्हींका होने से सुत मात्र—
क्षमा का है दुर्योधन पात्र।

सोच कर उनके वे उपकार
क्षम्य हैं उसके दुर्व्यवहार।
कहूँगा मैं भी किन्तु पुकार,—
न छोड़ेंगे हम निज अधिकार।
उचित समझेंगे हम जब जो
करेंगे उनके हित सब सो।

नहीं स्वत्वों का जिसको ध्यान
फेरता है वह विभु का दान।
और करता है निज अपमान,
किन्तु हम हैं क्षत्रिय-सन्तान।
करेंगे चाहे जितना त्याग,
न छोड़ेंगे भय से निज भाग।

अबल भी हों तो क्या परवाह?
करेंगे हम स्वधर्म्म-निर्वाह।
मरें भी, पर न करेंगे आह;
स्वर्ग की खुली पड़ी है राह।
हमारा नहीं प्रजा का राज्य;
किन्तु वह नहीं धर्म्मतः त्याज्य।

करें तो करलें वे उपहास,
पूर्ण हो ले अज्ञात निवास।
जायँगे तब हम उनके पास,
और फिर माँगेंगे निज न्यास,
उसे यदि देंगे वे हित मान
क्षमा पावेंगे बन्धु-समान।

किन्तु यदि वे हठ ठानेंगे ;
न्याय की बात न मानेंगे ,
याद रक्खें, तो जानेंगे ,
हमें रण में पहचानेंगे ।
राज्य के नहीं, धर्म्म के अर्थ
उठेंगे तब ये शस्त्र समर्थ ।

शान्त हो भाई, कृष्णे, शान्त ;
न आतुर हो तुम यों एकान्त ।
अभागा दुर्योधन है भ्रान्त ,
न हो निज सहनशीलता श्रान्त ।
तुम्हें है क्रोध, मुझे है खेद ,
नहीं है उसे हिताहित-भेद ।

दयामय, उसे बुद्धि-वर दो ;
भाइयो, तुम भी यह कर दो—
और उसको कुछ अवसर दो ,
धैर्य्य अपना न यहीं धर दो ।
क्षमा करके हरि ने सौ दोष ,
किया था चेदीश्वर पर रोष ।

नहीं हो सकते हैं हरि हम ,
स्वयं प्रभु हैं वे पुरुषोत्तम ।
किन्तु अनुकृति ही है क्या कम ?
करेगा वही हमें सक्षम ।
इसीसे होते हैं अवतार ,
कि उनसे शिक्षा ले संसार ।"

कहा तब अर्जुन ने—"हे आर्य्य ,
आपका शासन शिरसा धार्य्य ।
हमारा क्रोध रहे अनिवार्य्य—
सफल हों किन्तु आपके कार्य्य ।
तदपि क्या दुर्योधन का चित्त
फिरेगा अब भी शान्ति-निमित्त?

भले ही कुछ भी हो परिणाम ,
फलाफल से है हमें न काम—
करेंगे हम स्वकर्म्म निष्काम ,
विफल भी देंगे वे विश्राम ।
और भी शान्त रहें ये बाण ,
हमारे हैं बस आप प्रमाण ।

शान्त हों आर्य्य भीम, इस वार।"
भीम तब बोले मन को मार—
"आर्य्य का है जब यही विचार
वहन करना ही होगा भार।
सहा सब इनके कहने से;
हटेंगे अब क्यों सहने से?

आर्य्य के पीछे बहु अपमान—
सहे हमने सम्मान-समान।
आज भी वही हमारा ध्यान,
किन्तु यह जीवन है बेजान।
करूँ तो जाकर मैं अब लोप
हिंस्र जीवों पर ही वह कोप।"

भीम यों कह कर वचन यथार्थ,
गये आवेग - सदृश मृगयार्थ।
समझ निष्फल-सा निज पुरुषार्थ,
हुए निश्चल भी चञ्चल पार्थ।
युधिष्ठिर देकर पुनः प्रबोध,
मेटने लगे सभीका क्रोध।

उत्तरार्द्ध

इधर कौरव-दल गौरव धार ,
विपिन में करने लगा विहार ।
गूँजने लगी गान - गुञ्जार ,
नूपुरों की नव-नव झङ्कार ।
कहीं कुञ्जों में क्रीड़ा भेट ,
कहीं जल-केलि, कहीं आखेट ,

उसी वन में था एक तड़ाग ,
जहाँ उड़ता था पद्म-पराग ।
वहाँ का हरा-भरा भू-भाग ,
आप उपजाता था अनुराग ।
चौखटे में ज्यों हरे जड़ा ,
धरा पर हो सुर-मुकुर पड़ा ।

चाँदनी छिटकी थी उस रात ,
विचरता था वासान्तिक वात ।
सो रहे थे यद्यपि जलजात ,
अयुतशशि थे सर में प्रतिभात ।
    सरस सर की निहार शोभा ,
    सुरों का मानस भी लोभा ।

अप्सराओं को लेकर सङ्ग ,
नैश निस्तब्ध भाव कर भङ्ग , -
बहाता हुआ रास-रस-रङ्ग
चित्ररथ भरे अपूर्व उमङ्ग ,
    चन्द्र - तारों को दे व्रीड़ा ,
    वहाँ करता था जल-क्रीड़ा ।

अचानक इसी समय अनिवार
विपिन में करता हुआ विहार ,
झूमता हुआ कुञ्जराकार ,
साथ में लिये प्रणय-परिवार ,
    स्वयं भी जल विहार के हेतु ,
    वहाँ पर आ पहुँचा कुरु-केतु ।

उसे गन्धर्वों ने टोका ,
तर्जनी दिखलाई रोका ;
जरा-सा खाकर तब झोंका ,
क्रोध से उसने अवलोका ।
    उठी जो उसकी भृकुटि कराल ,
    खिंची सौ तलवारें तत्काल ।

हुआ गन्धर्वों पर आघात ,
चित्ररथ तक पहुँची यह बात—
कि 'कोई उद्धत मानव-जात
मचाता है आकर उत्पात ।'
    सिन्धु से उच्चैःश्रवा-समान ,
    हुआ सरनिर्गत वह बलवान ।

क्षोभ से जलने लगा शरीर ,
बिना पोंछे ही सूखा नीर !
बदल कर वस्त्र शीघ्र वह वीर ,
उठा कर धनुष, चढ़ा कर तीर—
    जिधर होता था रण का शोर ,
    चला शार्दूल-सदृश उस ओर ।

अप्सराएँ पुष्करिणी - सी ,
देख भय-बाधा करिणी-सी ,
विकल हो हहरी हरिणी-सी ,
काँपती थीं सब तरिणी-सी ।
हाथ से देकर उन्हें प्रबोध ,
चित्ररथ चला गया सक्रोध ।

पहुँच दुर्योधन-सम्मुख शूर ,
घोर नेत्रों से उसको घूरे ,
कूकता हो ज्यों कुपित मयूर
वचन बोला सुस्वर से क्रूर—
"कौन है तू, ओ उद्धत, धृष्ट ,
यहाँ जो आया मरणाकृष्ट ?"

सुयोधन भी बोला सक्रोध—
"ज्ञात क्या तुझको नहीं अबोध ,
कि करके जिसका मार्ग निरोध ,
किया है तुमने आत्म-विरोध ।
वही इस पृथ्वी का स्वामी
सुयोधन नृप हूँ मैं नामी ?"

"अरे, तू ही दुर्योधन है,
दुष्ट, दाम्भिक जो दुर्जन है,
अनुज जिसका दुःशासन है,
प्रकट जिसका पामरपन है?
भाइयों को भिक्षुक करके
बना नृप उनका धन हरके।

मानता हूँ, तू है नामी,
किन्तु कुल-काल, कुपथगामी।
आज इस पृथ्वी का स्वामी
बना फिरता है तू कामी।
पकड़ रखना तू इसका हाथ
सती होगी यह तेरे साथ!

मूढ़, तुझ-से कितने भूपाल
हुए, हैं, होंगे विपुल विशाल।
किन्तु सबके पीछे है काल,
रहा इसका ऐसा ही हाल।
बहुत है यही, कहूँ क्या और
कि देगी तुझको भी यह ठौर।

तुझे है लगा राज्य का रोग ,
इष्ट है अपना ही भू-भोग ;
कि भाई हैं जो पाण्डव लोग ,
सह्य उनका भी नहीं सुयोग ।
किन्तु है भू पर सबका भाग ,
करेंगे जिसे न तृण भी त्याग ।

समय है अब भी चेत अचेत ,
नहीं तो उजड़ जायगा खेत ।
धर्म्म-पथ धर कर धैर्य्य-समेत ,
लौटा जा जीवित नृपति-निकेत ।
हुआ था यद्यपि मुझको रोष ,
क्षमा करता हूँ तेरा दोष ।"

तुझे तो पर मैं दूँगा दण्ड ,
कि कोई भी हो तू पाषण्ड !
सँभल, अब यह मेरा कोदण्ड
छोड़ता है चञ्चल शर चण्ड ।"
बाण यों कहते कहते जोड़ ;
दिया झट दुर्योधन ने छोड़ !

किये कर्णादिक ने भी वार ,
चित्ररथ सँभला किसी प्रकार ।
और बोला—"धिक् पापाचार !
दण्ड ही है तेरा उपचार ।"
न करके उसने भी विक्षेप ,
किया सम्मोहन-शर-निक्षेप ।

शीघ्र उस शर का पड़ा प्रभाव ,
हुआ सब कौरव-दल हतहाव ।
चढ़ा तब गन्धर्वों को चाव ,
उन्होंने किया विकट बर्ताव ।
कि सारे शूरों को पकड़ा ,
विमानों से बाँधा, जकड़ा !

कौरव-स्त्रियाँ देख यह हाल ,
पीटने लगीं वक्ष या भाल ।
विकल थे कौरव क्रुद्ध कराल ,
सिंह ज्यों तोड़ न पाकर जाल ।
हुआ कातर-कोलाहल-नाद ,
शिविर तक पहुँचा यह संवाद ।

वहाँ थे वृद्ध सचिव या दास ,
व्यर्थ था उनका रण-प्रयास ।
विवश होकर लेकर निश्वास ,
चले वे धर्म्मराज के पास ।
किन्तु लज्जित थे मन मन में ,
पुकारें और किसे वन में !

भाइयों-सहित द्रौपदी-संग ,
पार्श्व में रक्खे चाप-निषंग ,
सुनाकर सुन्दर कथा-प्रसंग ,
दिखाते हुए धर्म्म के अंग ,
यज्ञ-वेदी के सम्मुख शान्त ,
युधिष्ठिर बैठे थे विश्रान्त

बिछे थे नीचे मृदु मृगचर्म ,
सुनों, उनकी वाणी का मर्म—
"करें यदि अन्य मनुज दुष्कर्म ,
तजें तो हम क्यों अपना धर्म ?
धैर्य ही धर्म्म - परीक्षा है ,
वही वीरों की दीक्षा है ।

राम ने राज्य-विभव छोड़ा,
उन्हें था वन में दुख थोड़ा?
भरत ने भी निज मुख मोड़ा,
धर्म्म-धन ही सबने जोड़ा।
सहेंगे दुख हम भी धर्म्मार्थ,
पुण्य ही तो है परम पदार्थ।

पाप का क्षणिक प्रभाव विलोक,
लोभ यदि सके न कोई रोक।
शोक,तो उसकी मति पर शोक!
बना क्या,बिगड़ा जब परलोक?
विजय है वही कि सब संसार
करे पीछे भी जय जयकार।

धर्म क्या है इतना असमर्थ
कपट जो करे प्रगति के अर्थ?
अर्थ ही तब तो हुआ अनर्थ,
पुण्य का होना ही है व्यर्थ।
शोक में ही तब तो सुख हो,
हमें फिर क्यों दुख में दुख हो?

सुयोधन से उसके अनुसार
करें यदि हम भी दुर्व्यवहार ,
रहा हममें भी फिर क्या सार ?
करो कुछ इसका तुम्हीं विचार ।
हमारा-उसका तो है नाम ,
किन्तु है पुण्य-पाप-संग्राम ।”

“नियम का पालन किसके संग ?”
प्रश्न है कृष्णा का सव्यंग ।
“किन्तु वह है आत्मा का अंग ,
करें हम कैसे उसका भंग ?
नियम ही अपना तोड़ा जाय ,
मेघ भी बरसें फिर क्यों, हाय !”

अचानक हुआ करुणचीत्कार—
“दुहाई धर्म्मराज के द्वार ,
कहें कैसे, हे परमोदार ,
बचाओ अपना ह-परिवार ।”
चौंक कर पाण्डव खड़े हुए ,
सचिव थे पैरों पड़े हुए !

"विजित हैं बन्धु आपके सर्व ,
उन्हें हैं बाँध चुके गन्धर्व ,
शकुनि, कर्णादिक का भी गर्व
हो गया रण में सहसा खर्व ।"
शत्रुओं का सुन यों अपकर्ष ,
वृकोदर बोले शीघ्र सहर्ष—

"सूर-मद था उनको भरपूर ,
हुआ वह आज अचानक चूर ।
चलो, हम सबके काँटे क्रूर
हुए ऊपर के ऊपर दूर !
लड़ें उनके पीछे हम क्यों ?
करें प्रतिकूल परिश्रम क्यों ?

चले थे हमें कुढ़ाने को ,
हमारी हँसी उड़ाने को ।
जायँ हम उन्हें छुड़ाने को—
कि बैठें हृदय जुड़ाने को ?
वीर वे और बली भी हैं ,
करें छल हो कि छली भी हैं !

कहो उनसे, अब धैर्य धरें,
विमानों में विचरें, न डरें।
जायँ, सुरपुर की सैर करें,
स्वर्ग का भी साम्राज्य हरें।
स्वर्ग यदि न भी मिलेगा हाल ;
नरक कोई न सकेगा टाल।"

भीम के ऐसे भाव विलोक,
हुआ पाण्डव-पति को अति शोक।
सके वे और न मन को रोक,
और यों बोले उनको टोक—
"भीम, शरणागत का अपमान!
कहाँ है आज तुम्हारा ज्ञान?

कौरवों ने जो अत्याचार—
किये हैं हम पर बारंबार,
करेंगे उनका हमीं विचार,
नहीं औरों पर इसका भार।
क्रूर कौरव अन्यायी हैं,
हमारे फिर भी भाई हैं।

जहाँ तक है आपस की आँच ,—
वहाँ तक वे सौ हैं, हम पाँच ।
किन्तु यदि करे दूसरा जाँच ,
गिनें तो हमें एक सौ पाँच ।
कौन हैं वे गन्धर्व गँवार
करें जो आकर यह व्यवहार ?

वीरता इसे नहीं कहते—
कि हम-से पाँच पाँच रहते ,
हमारे भाई यों बहते ,
और हम रहें इसे सहते ।
दण्ड उनको देने के अर्थ
नहीं हैं क्या हम स्वयं समर्थ ?

वत्स अर्जुन, सत्वर जाओ ,
और तुम उन्हें छुड़ा लाओ ।
शत्रु समझो, तो भी आओ
द्विगुण जय यों उन पर पाओ ।
भीम, सहदेव, नकुल सब लोग ;
करो जाकर समुचित उद्योग ।"

कहा अर्जुन ने—"जो आदेश ,
किन्तु सब लोग करें क्यों क्लेश ?
द्रौपदी, क्या है राज्योद्देश ?
बाँध सकती हो अब तुम केश ।
आर्य्य के इस सद्भाव-समक्ष
और क्या हो सकता है लक्ष ?"

द्रौपदी ने शोकाश्रु पिये ;
भीम थे भू पर दृष्टि दिये ।
गर्व से ऊँचा शीश किये
गये अर्जुन गाण्डीव लिये ।
लिया उनको सिर पर पथ ने ;
समादर किया चित्ररथ ने—

"मित्र, अच्छे आये इस काल ,
देख लो निज रिपुओं का हाल ।
तुम्हारे काँटे ये विकराल
लिये हैं मैंने सभी निकाल ।
मिले थे सुरपुर में हम लोग ,
आज फिर आया शुभसंयोग ।"

प्रेम-पूर्वक बोले तब पार्थ—
"हुआ मैं आज अतीव कृतार्थ।
यहाँ है ऐसा कौन पदार्थ,
करूँ जिससे आतिथ्य यथार्थ?
किन्तु ये भाई हैं मेरे—
आप यों जिनको हैं घेरे।"

चित्ररथ बोला—"कैसी बात!
ज्ञात तो हैं इनके उत्पात?"
कहा अर्जुन ने—"सब हैं ज्ञात,
विश्व भर में हैं वे विख्यात।
किन्तु कहते हैं आर्य्य उदार—
करेंगे उनका हमीं विचार।"

चित्ररथ बोला बाहु पसार—
"नहीं क्या मुझको यह अधिकार?"
कहा अर्जुन ने उसी प्रकार—
"युद्ध में जाऊँ जब मैं हार।"
"चाहते हो तो यही सही।"
चित्ररथ ने यह बात कही।

कहा अर्जुन ने—"अच्छी बात,
कीजिए 'श्रीगणेश' हे तात !
किन्तु वे दिव्यायुध विख्यात
ज्ञात हो मुझको भी हैं ज्ञात।
समझिए मुझको प्रस्तुत ही,
वैर-युत नहीं प्रेम-युत ही।"

अन्त में होने लगा सु-युद्ध,
नहीं था फिर भी कोई क्रुद्ध।
कार्य्य करते थे विनय-विरुद्ध,
किन्तु दोनों के मन थे शुद्ध।
पालने को निज पक्ष पवित्र,
तर्क-सा करते थे दो मित्र !

चित्ररथ ने की तब माया;
हुई उसकी अदृश्य काया।
त्राण उसने न किन्तु पाया,
शब्दबेधी शर धर लाया।
बनी वह बाणों की कारा,
हुआ बन्दी-सा बेचारा !

स्वयं वह करता जो जो वार ,
पार्थ करते उसका प्रतिकार ।
न होता उनका विफल प्रहार ,
हुई गन्धर्वों की ही हार ।
देख यह रीति लड़ाई की
उन्होंने आप बड़ाई की ! ४

पार्थ फिर बोले वचन विनीत—
"क्षमा करना मुझको हे मीत !
हार हो चाहे मेरी जीत ,
कार्य्य था किन्तु न विधि-विपरीत ।
भाव अब भी हैं मेरे भव्य ,
कठिन ही होता है कर्तव्य ।

हुई रक्ताक्त आपकी देह !"
चित्ररथ बोला तब सस्नेह—
"बिजलियाँ चमकीं, बरसा मेह ,
तृप्त ही हूँ मैं हे गुण-गेह ।
आत्मजय तुमने पाया है ,
शत्रु का शत्रु हराया है !"

लिये तब कौरव-दल को सङ्ग—
उड़ा था जिसके मुहँ का रङ्ग।
फिरे अर्जुन ज्यों मत्त मतङ्ग,
पीठ पर डुलता चला निषङ्ग।
पहुँच कर पाण्डव-राज-समीप,
प्रणत वे हुए पाण्डु-कुल-दीप।

झुका दुर्योधन का भी भाल,
अङ्क में भर उसको तत्काल,
युधिष्ठिर बोले आँसू डाल—
"कुल-व्रत पालो हे कुल पाल!"
किन्तु दुर्योधन का वह मौन
कहेगा सम्मति-सूचक कौन?

—

श्रीमैथिलीशरणजी गुप्त लिखित काव्य—

साकेत	३॥)	किसान	।=)
गुरुकुल	३)	शकुन्तला	।=)
यशोधरा	१॥)	नहुष	।=)
द्वापर	२)	विश्व-वेदना	।=)
सिद्धराज	१।)	काबा और कर्बला	१।)
भारत-भारती	१॥)	कुणाल गीत	१॥)
जयद्रथ-वध	॥।)	अर्जन और विसर्जन	।=)
झंकार	॥=)	वैतालिक	।)
पत्रावली	।-)	गुरुतेगबहादुर	।)
बक-संहार	।=)	स्वप्न वासवदत्ता	१)
वन-वैभव	।=)	रङ्ग में भङ्ग	।)
सैरन्ध्री	।=)	विकट-भट	=)
पञ्चवटी	।=)	अजित	१॥)

आपके अन्य ग्रन्थ और

श्रीसियारामशरणजी गुप्त के सारे ग्रन्थ भी हमसे मँगाइए।

प्रबन्धक—साहित्य-सदन, चिरगाँव (झाँसी)

श्रीसियारामशरणजी गुप्त की रचनाएँ

कविता

आर्द्रा	१)	पाथेय	१)
विषाद	।–)	दूर्वादल	१)
मौर्य-विजय	।)	आत्मोत्सर्ग	॥)
अनाथ	।)	दैनिकी	॥=)
मृण्मयी	१।)	बापू	॥)
नकुल	१॥)	नोआखाली में	॥)
जयहिन्द	।)	गीता-संवाद	१)

उपन्यास

गोद १।) नारी १॥) अन्तिम-आकांक्षा १॥)

पुण्य-पर्व (नाटक) ।॥) उन्मुक्त (गीतिनाट्य) १।)

मानुषी (कहानी-संग्रह) १) झूठ-सच (निबन्ध) २)

हमारे अन्यान्य ग्रन्थों के लिए सूचीपत्र मँगाइए।

प्रबन्धक—साहित्य-सदन,

चिरगाँव (झाँसी)